Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-14, Issue-2, September-2020
www.researchguru.net

ऋग्वैदिककाल में स्त्री का सामाजिक दरज्जा

भावना एन. उसदडिया
M.A. Goldmedal, M.Ed., Ph.D. Scholar Saurashtra Universiy, Rajkot Conti...

(१) पूर्वभूमिका :

भारतीय संस्कृति हजारों साल प्राचीन हैं, समय के साथ विविध परिवर्तनो होने लगे। समाज-धर्म, राज-शासन और आर्थिक आदि क्षेत्रों में कंई परिवर्तन हुए है।प्राचीन संस्कृति में विविध परिवर्तनों के साथ स्त्री के दरज्जे में परिवर्तन आया हैं,प्राचीन वैदिक युग में स्त्री का समय सुवर्णयुग था । इस युग में स्त्री की स्थिति श्रेष्ठ थी,समाज में दरज्जा भी उच्च था[१]।इस तरह सामाजिक क्षेत्र में स्त्री का महत्त्व बहुत था,ऐसा वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है ।

(२) ऋग्वेदिक काल में कन्या जन्म :

वैदिककाल के साहित्यों में ऋग्वेद भारत का ही नहीं, अपितु संसार का प्राचीनत्तम ग्रन्थ हैं । उसे नारी जाति की मान्य स्थिति का स्वर्णिम काल मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए । ऋग्वेद की ऋचाओं में बार-बार पुत्र प्राप्ति के लिए आर्यलोग विविध देवी-देवता से प्रार्थना के माध्यम से पुत्र जन्म होने का वरदान मांगने का उल्लेख हैं । आर्यो की प्रार्थना में वीर, पराक्रमी, श्रेष्ठ और यशस्वी पुत्र जन्म होने की अभिलाषा व्यक्त की गई हैं। इस तरह पराक्रमी पुत्र प्राप्ति के लिए आर्य अग्निदेव का पूजन करते थे।ऋग्वेद के तीन मन्त्रो में आर्यलोग पूषा देवता से श्रेष्ठ और सुलक्षणी कन्याओं प्रदान करने के लिए प्रार्थना करते हैं[२] ।

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि ।
आ भक्षत्कन्यासु नः
(९.६७.१०)[३]

अब (अजन्या - सनातन) जिसका वाहन हो ऐसा पूषा देवता, प्रत्येक पवित्र स्थान पर हमारी रक्षा करो, आप हमे इच्छित और सुलक्षणी कन्या (शक्ति, पुत्री अथवा बहु) प्रदान करो[४] । आग चलकर दोशी टीना महिला विश्वकोश में **'आ भक्षत्कन्यासु नाम'।।** मन्त्र अनुसार लिखते हैं कि 'आर्य पूषा देवता समक्ष अपनी गोद फैलाते हैं कि हमें श्रेष्ठ कन्या प्रदान करों ' ऐसी हमारी प्रार्थना फलित हो।लक्ष्मीरूप कन्या जन्म होता हैं तब आर्यलोक हर्षोल्लास नहीं मनाते लेकिन कन्या जन्म को जरूर मांगलिक प्रसंग मानते । कन्या का आदर करते थे, देवी के रूप में आदर करते, पुत्री को पुत्र समान मानते थे[५] ।

पुमासं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानी जनयाश्च यान् ।। (३.२३.३)

अथर्ववेद(हिन्दी भाष्य)में काण्ड-३,सूक्त-२३,और मन्त्र-३ में ऋग्वेदिक काल में पुत्र-पुत्री सदैव पराक्रमी उत्पन्न होने की प्रार्थना की गई हैं[६] ।

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु ।
आ भक्षत्कन्यासु नः
(९.६७.११)[७]

उत्तम मुकुटधारी पूषा देवता के लिए यह मधूर सोमरस अर्पण हैं और वह हमे श्रेष्ठ कन्या प्रदान करता है । इस मन्त्र से यह निष्कर्ष हैं कि ऋग्वेदकाल में पुत्री कामना की गई हैं, पुत्री जनम से उदास होने का भाव नहीं हैं । ऋग्वेद में तीन मन्त्र के उपरान्त कहीं भी पुत्री जन्म की कामना नहीं हैं[८]। ऋग्वेदकालिन समाज में पुत्र और पुत्री जन्म पर खास कोई भेद दिखने नहीं मिलता[९] ।इस तरह ऋग्वैदिक काल के साहित्य में ज्ञात होता है कि ऋग्वैदिक काल में पुत्र और पुत्री के जन्म पर खास कोई भेदभाव नहीं था ।

(३) कन्या का पालन :

ऋग्वेद काल में पुत्र और पुत्री पालन में भेदभाव नही थे; उसी समय पुत्र-पुत्री वाला परिवार सुखी परिवार में समाविष्ट होता था, ऋग्वेद में ऐसा सुखी परिवार देखने को मिलता हैं[१०]। ऋग्वेद की अन्य दो ऋचा में पालन-पोषण के सम्बन्ध में वर्णन इस तरह हैं कि,

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः।
उभा हिरण्यपेशसा ।।८।। ८.३१.८

यदी मातरौ जनयंन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ।।२।।[११] ३:३१.२

यज्ञ करते हुए सुवर्णाभूषणोयुक्त दम्पती को अपने पुत्र-पुत्री के साथ आनन्दपर्वक जीवन बिताने का आशीर्वाद प्रदान हो रहा है । यहाँ पुत्र-पुत्री को सुवर्णाभूषणों के रूप में दिखाया हैं (८:३१:८) । पुत्र पिता के कार्य करता हैं तो पुत्री देवी के रूप में आदर-सन्मान प्राप्त करती हैं[१२] (३:३१:२) ।

यदीयं दुहिता तव विकेशस्यरूदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यश्धम
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ।(१४.२.६०)

अथर्ववेद में वर्णन हैं कि जो पुत्री दु:खी हो, पुत्री रोती हैं, पुत्री कष्टदायक पीड़ा कर रही हो तो पापकर्म होता है[१३]। पुत्री का लालन-पालन अच्छा हो रहा होगा ऐसा इस मंत्र से प्रदर्शित है । आर्यो को पुत्री उतनी ही प्रिय थी जितने पुत्र। पुत्री की प्राप्ति के लिए वे पूषा देवता की मनौती करते थे । जैसा कि आगे बताया जा चुका है, पुत्री का समादर इतना अधिक था कि उन्हें आर्यजन पवित्र देवी के रूप में

देखते थे पुत्री के भरण–पोषण, संरक्षण और परिणय का भार पिता अथवा उसके अभाव में भाई पर रहता था । ऋग्वेद में माता की गोद में बैठी हुई दो बहनों का वर्णन हैं जिससे माता–पिता के पुत्री प्रेम का बोध होता है । परन्तु यदि कभी कभी पुत्री की चाहना कम भी हैं तो उसका कारण संभवत: यह था कि विवाह के बाद दूसरे कुल में चली जाती थी । पुत्री (कन्या)का एक पर्याय 'दूहिता' है । यह दूहने अर्थवाली दुह धातु से बना हैं । विद्वानों का विचार हैं कि कन्या या पुत्री दूध दूहने का कार्य करती थी । गौरक्षा का प्रधान कार्य घर में इन्हीं के हाथों में रहता था ।[१४]

ऋग्वेद में दसवां मँड़ल, सूक्त १५९ और ऋचा तीन में[१५] तथा अथर्ववेद काण्ड चौदवाँ, सूक्त दूसरा और ऋचा ६० में **'दूहिता'** शब्द का उल्लेख है[१६], आर्यलोग के कृषक और पशुपालन का व्यवसाय में परिवार की सबसे बड़ी पुत्री का कार्य सुबह–शाम गाय का दूध दोहने का कार्य करना पड़ता था । इस दूध दोहन कार्य का पर्याय 'दूहित्तर' कर्मसूचक शब्द हैं । इस तरह ऋग्वैदिककाल में पुत्री देवी के रूप में सन्मानीय थी। पुत्री बड़ी हुआ करती तब आर्यकूल में पुत्री के माता–पिता के चिन्ता का कारणरूप बनती थी । क्योंकि चारित्र्यशील और बुद्धिवान पति खोजकर विवाह करना[१७] विदाई के समय उपहार एवं द्रव्य[१८] (उपहार और द्रव्य को 'वहतु' कहते) देने की तैयारीयाँ करनी पड़ती थी ।)

(४) कन्या (पुत्री) की शिक्षा :

प्राचीन भारत में शिक्षा का बहुत अधिक महत्त्व था। यह माना जाता था कि बालक के विकास के लिए उसे केवल माता–पिता के प्रभाव में रहना ही पर्याप्त नहीं हैं, अपितु उसे आचार्य के भी प्रभाव में रहना चाहिए । "मातृमान्, पितृमान्, आचार्यमान् पुरूषो वेद", इस शास्त्रवाक्यानुसार बालक पहले माता के प्रभाव में रहता है, फिर पिता के और बाद में आचार्य के प्रभाव में ।[१९] हमे देखा की ऋग्वेदकाल में कन्या की स्थिति सन्मानित थी, पुत्र के समान उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी । ऋग्वेद की ऋचाओं में प्रयुक्त विशेषणों और अनेक उदाहरणों से पुष्टि होती हैं कि कन्या शिक्षा प्राप्त करती थी । ऋग्वेद १०.१५६.२ में कन्या ने आत्मगौरवपूर्वक घोषणा की हैं कि मैं "ज्ञानवती" हुँ, घर की प्रमुख और शत्रुनाशिका हुँ । ऋग्वेद ५.४१.७ में सुशिक्षित कन्या के लिए "विदुषी" (पूर्ण विद्यायुक्त स्त्री) का प्रयोग किया हैं और "उसाषानक्ता" को उस विदुषी कन्या के समान यज्ञ को धारण करने का उपदेश दिया हैं ।[२०]

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्य शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ।। (१०.३९.६)

ऋग्वेद के दशवाँ मंड़ल, सूक्त–३९, ऋचा ६ मे एक स्त्री (घोषा) देवों को प्रार्थना करती है, आहवान करती हैं कि मेरी प्रार्थना सूनो, जैसे माता–पिता–पुत्र के शिक्षतम् (शिक्षा), वैसे हमें प्राप्त हो ।[२१] भारत का गेझेटियर में पृष्ठ ९० पर डॉ. पी. एन. चोपरा लिखते हैं कि वैदिक काल में स्त्रीयाँ कों पुरूषो जैसा ही दरज्जा प्राप्त था। पुत्रों को उपनयन संस्कार होते थे इसी तरह पुत्रीओ को उपनयन होते । पुत्री भी पुत्र की तरह उच्च शिक्षा और ब्रह्मचर्य पामती थी।[२२] वैदिक युगमें स्त्री का उपनयन संस्कार होता था ।[२३]

अहं केतुरहं मू धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ।। (१०.१५९.२)

ऋग्वेद मंडल–१०, सूक्त–१५९, ऋचा दूसरी में एक और इन्द्राणी गर्व से बोलती हैं "मैं ज्ञानवती और अग्रणी हुँ"[२४] इस तरह ऋग्वैदिक काल में कन्या उच्च शिक्षा प्राप्त कर विदुषी एवं ऋषिकाएँ बनती थी । वेदों में शिक्षा प्राप्त करने की पद्धति ब्रह्मचर्य पद्धति थी ।[२५]

वेद काल में कन्या को शिक्षा दि जाती उतनी ही नहीं कन्या के लिए शिक्षा अनिवार्य थी । उम्रलायक, रूपवती कन्या हो इतना जरूरी नहीं था, इसके साथ साथ अच्छी शिक्षा भी जरूरी मानी जाती, तभी कन्या को मनपसन्द जीवनसाथी मिलता था । प्राचीनकाल में कन्या अच्छी शिक्षित हो वो ही विवाह की लायकात मानी जाती थी । ऋग्वेद में वर्णन हैं कि कम उम्रवाली कन्या के विवाह के बारे में नहीं सोचना चाहिए, अविवाहित शिक्षित कन्या को कन्या के बराबर शिक्षित युवान के साथ ही विवाह करना चाहिए । यजुर्वेद में माता–पिता को ऐसी सलाह दि गई हैं कि शिक्षित कन्या का विवाह कन्या के बराबर शिक्षा ग्रहण की हो, ऐसा युवक के साथ हो । अथर्ववेद में भी कन्या शिक्षा जरूरी बताते हुए कहा हैं कि **"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्हते पतिम्"** इस शास्त्रार्थ वाक्य से ज्ञात होता हैं कि कन्या ने ब्रह्मचर्याश्रम में योग्य शिक्षा प्राप्त की हो तभी मनपसन्द पति प्राप्त हो सकें[२६] । इन सब आधार पर हम मान सकते हैं कि ऋग्वेद काल में पुत्र के लिए शिक्षा जरूरी मानी जाती थी उतनी ही कन्या के लिए जरूरी थी । ऋग्वेद में शिक्षा प्राप्त करने की पद्धति ब्रह्मचर्य पद्धति हैं । अर्थात् पुत्र–पुत्री गुरूकुल में जाकर उपनयन संस्कार में दिक्षित होकर गुरू के समीप रहते हुए, शिक्षा प्राप्त करें । कुछ विचारकों की मान्यता हैं कि कन्याओं की शिक्षा घर में होती थी किन्तु १०.१०८.४ में कन्या के लिए प्रयुक्त **"उपनीता"** विशेषण संकेत देता हैं कि कन्या का उपवीत संस्कार होता था और वे ब्रह्मचर्य विद्याध्ययन करके स्नातिकाएँ बनती थी ।[२७] श्री टीना दोशी **"भारतीय महिला विश्वकोश"** में वर्णन करते हैं कि कन्या का उपनयन संस्कार के बाद कन्या पवित्र ग्रन्थों का ज्ञान सम्पादन करती थी, गुरूकुल में आचार्य के घर पर रहती थी, वहाँ लड़के और अन्य सहपाठी के साथ रहकर शिक्षा प्राप्त की जाती थी । गुरूकुल में कन्याओं को दो भागों में बाँटी हुई थी; **"ब्रह्मवादिनी"** और **"सद्योवधू" "ब्रह्मवादिनी"** प्रकार की कन्याएँ आजीवन शिक्षा प्राप्त करती थी । **"सद्योवधू"** प्रकार की कन्या १५–१६ साल की उम्र तक वैदिक मन्त्रो, रोजिंदी प्रार्थना स्तूति, जरूरी यज्ञ के मन्त्रों और
संगीत–नृत्य की शिक्षा प्राप्त करती थी । वेद, धर्मशास्त्रो, तत्त्वज्ञान जैसी अभ्यासी हुआ करती थी ।

वैदिक काल में कन्या को आध्यात्मिक और लौकिक ऐसे दो प्रकार की शिक्षा दि जाती थी । आध्यात्मिक शिक्षा में धर्मशास्त्रों, ऐतिहासिक परम्परा और पौराणिक सम्बन्धी ज्ञान दिया जाता था, इसके परिणाम स्वरूप कंई कन्या विदुषी, ऋषिका और ब्रह्मवादिनी बन सकती थी और वेदमन्त्रों की रचना करती थी । लौकिक शिक्षा में संगीत-नृत्य, युद्धशास्त्र[२८] जैसी शिक्षा दि जाती थी ।

ऋग्वेद रचना में कंई कन्याओं का नाम मिलता है इसमें २५ साल के आसपास की कन्याओं का बड़ा योगदान हैं, अदिति, जुहु, इन्द्राणी, सरमा, उर्वशी, सूर्या जैसी कन्या को "दैवी अथवा अर्धदैवी" की कक्षा में रख सकते हैं । घोषा, वाचा, अपाला, विश्ववारा, लोपामुद्रा और रोमशा को "ब्रह्मवादिनी" होने का वर्णन हैं ।[२९] ऋग्वेद में सबसे पहली कन्या **"रोमशा"** हैं कि जिसका नाम **'ब्रह्मवादिनी'** के रूप में आचार्य सायण के द्वारा प्रयोजित हुआ हैं ।[३०]

ऋग्वेद के दसमंडल में से कुल छ मंडल में कन्याओं (स्त्री ऋषित्व के रूप में) का उल्लेख हैं । प्रथम मंडल में रोमशा और लोपामुद्र, चौथा-दसवा मंडल में अदिति, पाचवा मंडल के विश्ववारा, आठवा मंडल में शश्वती और अपाला, नवा मंडल में शिखन्डनी जैसे नाम हैं । दसवा मंडल में ऋषिकाओं के रूप में भी कंई नाम हैं, इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी, सूर्यासावित्री, इन्द्राणी, उर्वशी, दक्षिणा प्राजापत्या, शची पौलोभी, सार्पराज्ञी, यमी वैवस्वती, घोषा और श्रद्धा कामायनी का नाम है ।[३१] ब्रह्मवादिनी कन्याओं का व्यक्तिगत थोड़ा परिचय देखें तो,

- **ब्रह्मवादिनी कन्याओं :**

रोमशा, लोपामुद्रा, अपाला, विश्ववारा, घोषा, वाचा

रोमाशा : ऋग्वेद-प्रथम मंडल, १२६वाँ सूक्त में सात ऋचा दि हैं । देवो के गुरू बृहस्पति की पुत्री रोमशा के शरीर पर रोमावली थी, वह अपने पति को नापसन्द थी। नारी स्वातंत्र्य के लिए वैदिक काल में सबसे पहले आवाज़ उठाया और नारी स्वातंत्र्य ध्वज धारण किया था। वैदकालिन **"स्वातंत्र्य नारी"** का विरूद्ध है, नारी अधिकार के लिए लड़ने वाली प्रथम महिला थी ।[३२]

लोपामुद्रा: ऋग्वेद के प्रथम मंडल १७९वाँ सूक्त में अपने पति अगस्त्य ऋषि साथ संवाद के रूप दो मन्त्र,यजुर्वेद में छ मन्त्र की रचना की हैं । लापामुद्राने मन्त्रदृष्टा ऋषिकाना रूप स्त्री गौरव वर्णित किया हैं।ऋग्वेद के दो मन्त्र में सन्तान उत्पत्ति तथा जरूरियात और मर्यादा के सम्बन्ध में चर्चा हैं।[३३]

अपाला : ऋग्वेद के आठवें मंडल, इक्यानवाँ सूक्त में एक से सात मन्त्रों की रचना की हैं । अपाला कुष्ठ रोग से पीड़ित थी, पति द्वारा तिरस्कृत अपाला अपने पिता के घर जाती हैं । अपने पिता के घर दरिद्रता व्यापी हुई थी, घर में खाने का अन्न भी नहीं था कुष्ठ रोग से मुक्ति पाने के लिए अपालाने इन्द्रदेव की स्तूति की, इन्द्रदेव प्रसन्न हुए, सोमरसपान करवाया और इन्द्रदेव की कृपा से कुष्ठ रोग से मुक्त हुई ।[३४]

विश्ववारा : वेद में एकमात्र पुरोहिता के रूप में विश्ववाराथी ।[३५] ऋग्वेद ऋचा ५.२८.१-६ मे विश्ववाराने अग्निदेव की स्तुति की है । ५.२८.१ ऋचा में विश्ववारा पुरोहिता होने का सन्दर्भ मिलता हैं । विश्ववारा ब्रह्मवादिनी, विदूषी और विद्याव्यसंगी थी, विश्ववारा ऋग्वेदभाषिणी के नाम से भी जानी जाती है । ऋग्वेद में विश्ववारा का परिचय अत्रि गोत्र की होने से "विश्ववारा आत्रेयी" नाम से पचलित है ।[३६]

घोषा : 'भारतना नारी रत्नो' में शांतिलाल जानीने "कुमारिका घोषा" नाम[३७] से सम्बोधन किया है । ऋग्वेद रचना में स्त्रीदृष्टाओं का प्रदान है, इसमे स्त्री-दृष्टाओं में घोषा का नाम प्रथम आता है । ऋग्वेद के दसवें मंडल, सुक्त-३९,४०में चौदह-चौदह मिलाकर कुल २८ ऋचा घोषा की रचना है । घोषा के दादा "दीर्घतमा" और पिता "कांक्षीवान" अश्विनी देवो के सूक्तो के दृष्टा थे । घोषा ब्रह्मवादिनी तथा विदुषी भी थी । कुष्टरोग पीड़ित थी । विवाह योग्य उम्र में विवाह नही हो सका इस लिए पितृगृह में रहकर जीवन व्यतीत किया, बाद में अश्विनीदेवो की स्तूति से कुष्टरोग से मुक्त हूई और विवाह सुख के लिए लायक बनी[३८] उसी समय ६० साल की उम्र थी ।

वाक् : ऋग्वेद मंडल-१०, सूक्त-१२५ की ऋषिका वाक्देवी या वागाम्भणी के नाम से उल्लेख है । वाक्देवी अंतरिक्ष स्थानीय देवता के रूप में उल्लेखित है ।[३९] वाक्देवी ने ऋग्वेद के दसवें मंडल मे सूक्त १२५ में "देवीसूक्त" नाम से आठ मन्त्रो की रचना की है वह "देवीसूक्त" आज भी चंड़ीपाठ के साथ वही आठ मन्त्रो से भगवती शक्तिदेवी की उपासना की जाती है ।[४०]

"वैदिक संस्कृति संरचना" में प्रो. इला घोष पृष्ठ-३९ पर कंई स्त्री-ऋषिकाओं "ब्रह्मवादिनी" होने का वर्णन करते है । आगे ब्रह्मवादिनी का विवरण हुआ है इसके सिवा कंई नाम हमें मिलते है, जो ब्रह्मवादिनी है । जैसे; इन्द्राणी जुहू, उपनिषत, निषत् अगस्त्यस्वसा, इन्द्रमाता, सरमा, उर्वशी, नदियाँ, यमी, शश्वती, श्री लाक्षा, सार्पराज्ञी, श्रद्धा, मेघा, दक्षिणा, रात्री एवं सूर्यासावित्री ऐसी कंई स्त्री ऋषिका हुई जिसे "ब्रह्मवादिनी" कहा जाता है ।[४१]

(५) विवाह :

ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद में कन्या विवाह की वय कम से कम १६ साल बताई गई हैं, स्वामी दयानन्द ने विवाह संस्कारविधि "विवाह प्रकरण" वेद एवं आयुर्वेद के प्रमाणों के आधार पर कन्या की उम्र कम से कम १६ साल की उम्र बताई है ।[४२] इसके अतिरिक्त कंई विद्वानों ने वैदिक साहित्य के आधार पर वैदिक काल में कन्या-विवाह सम्बन्ध में चर्चा की हैं, विमलादेवी राय अपना ग्रन्थ **"वेदकालीन समाज"** और **"संस्कृति"** में लिखते हैं कि वैदिक ग्रन्थो में कनया विवाह की उम्र १६ साल बताते हैं । वेदकाल के ग्रन्थो में कहीं भी बालविवाह का उदाहरण या तो वर्णन नहीं मिलता[४३] । इस तरह हम मान सकते हैं कि वैदक काल में बालविवाह प्रथा नहि थी ।

वैदिक साहित्य में विवाह योग्य कन्या को 'युवती' सम्बोन्धन किया गया हैं । वेदग्रन्थों में अविवाहित कन्या के निर्देश करने वाला सम्बोधन है वह कन्या की विवाह योग्य उम्र से सम्बन्ध हैं, उदाहरणरूप 'कना', 'कनीनका', और 'कन्यना' इन सभी का अर्थ युवा कुमारिका होता है । वेदकाल में खास करके कन्याओं विवाह सम्बन्धी निर्णय ले सकती थी ।[४४] स्त्री के लिए विवाह करने पर कोई दबाव नहि था । स्त्री अपना जीवनसाथी पसन्द करने पर स्वतन्त्र थी । प्रेमविवाह को भी माता-पिता की तरफ से आशीर्वाद मिलता था ।[४५] विद्वानों के मतानुसार कन्याएँ अपने श्रृंगार सजधज कर **"समन"** (मेला) नामक उत्सवों में सम्मिलित हुआ करती थी, जहाँ जीवनसाथी का चुनाव करना उनका मुख्य प्रयोजन होता था । स्वयं माताएँ उन्हें ऐसे अवसरों के लिए सजाकर भेजती थी और प्रोत्साहित करती थी । कन्या पूरा लाभ उठाकर मन चाहा साथी को अपने पति के रूप में पसन्द करती थी ।[४६] वेदग्रन्थों में भी कन्या अपना पति चूनने में स्वतंत्र थी ।

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यासा वार्येण ।

भद्रा वधूर्भवती यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ।। (१०.२७.१२)

स्त्री-पुरूष का वर्णन करते हुए कहा गया है कि कितनी स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जो पुरूष के वचन और धन से सन्तुष्ट होती है। उत्तम वधू वही हैं जो सुरूपा है और लोगो के मध्य अपने जीवनसाथी को स्वयं चूनती हैं ।[४७]

स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळहमश्विना ।।(८.३५.५)

हे अश्विनीकुमारी,जिस तरह युतीओं के स्वयंवर में आने का आमन्त्रण युवान स्वीकारता है, इस तरह आप हमारी स्तूतिओं का स्वीकार करों ।[४८]

उपरोक्त दो ऋग्वेद मन्त्र के ज्ञान होता हैं कि वेदकालीन समाज में युवतीओं के लिए स्वयंवर में अपना पति चूनने का पूर्ण अधिकार था ।

कन्या को अपना पति पसन्द करने स्वयंवर के उपरान्त अन्य कंई उत्सवों का आयोजन होता था । डॉ. लीला समतानी की नोंध अनुसार, वेदकाल में **महावर्त और समन (समन मेला)** हुआ करता था । वैदिककाल की कन्या का इस उत्सवों में अपना पति पसन्द करने के लिए पूरी तक मिलती । **'महावर्त'** वसन्त ऋतु का लोकप्रिय उत्सव था । इस अवसर पर गीत संगीत के सूरों का दबदबा रहता था, नृत्य मी होते थे । **'समन'** एक मेला जैसा उत्सव होता था । आगे चलकर टीना दोशी लिखते हैं कि 'समन' सम्पूर्ण समाज के समर्थन रूप सामाजिक संस्था थी । **'समन'** के प्रसंग पर बड़े पैमाने युवक-युवती एकत्र होते थे, और अपने जीवनसाथी की खोज करते थे । घर के माता-पिता और वृद्धस्थ लोग युवती को समन में जाने का प्रोत्साहन करते थे । इस तरह 'समन' जैसा उत्सव अपना जीवनसाथी पसन्द करने का एक मेला था ।[४९]

भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम ।

कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं ? विश्वकायाव संजथः।।(१०.६५.१२)

ऋग्वेद संहिता - १०.६५.१२ में वर्णित है कि युवती माता-पिता की इच्छा विरूद्ध अपने प्रेमी के साथ विवाह करने का साहस करती थी।[५०] टीना दोशी के ग्रन्थ **"भारतीय महिला विश्वकोश"** में नोंध अनुसार विमद ऋषि और कमद्यु नामक स्त्री का विवाह उदाहरणरूप है।[५१] वेदकालीन युवती सूर्या सावित्री, यशस्वती और कमद्यु यह तीनों युवती ने प्रेमविवाह किया था, लेकिन विवाह के प्रकार अलग थे। सूर्या सावित्री ने प्राजापत्य विवाह, यशस्वतीने अनुलोभ विवाह और कमद्युने अनुलोम विवाह तथा राक्षस विवाह मिश्रित विवाह था।[५२] ऋग्वेद काल में युवक-युवती के विवाह समय कुछ शुल्क के बारे में ऋग्वेद मंडल (१.१०६.२) में उल्लेख हैं ।

वर (युवक) के पक्ष द्वारा कन्या के माता-पिता को शुल्क देने का उल्लेख हैं । इससे विवाह में शुल्क प्रथा का अनुमान होता है । यह प्रथा भी कन्या के महत्त्व की और इंगित करता है । आज कन्यापक्ष को दहेज के रूप में शुल्क देना पड़ता है, जब की ऋग्वेद में इससे विपरित स्थिति हैं ।[५३] के. सी. श्रीवास्तव अपने ग्रन्थ "प्राचीन भारत का ईतिहास तथा संस्कृति " पृष्ठ नं. ८८ पर नोंध करते हैं कि, कन्या के विदाई समय कंई उपहार एवं द्रव्य दिए जाते थे जिसे **"वहतू"** कहते थे ।[५४] इस तरह हमे जरूर मानना पड़ेगा कि ऋग्वेदकाल में विवाह शुल्क प्रथा थी । विधिवत् सम्पन्न हुए विवाह को स्त्री-पुरूष किसी भी प्रकार से समाप्त नहीं कर सकते थे और विवाह एक सामाजिक और पवित्र बन्धन था ।[५५]

(६) पत्नी के रूप में स्त्री :

अधो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां

न विन्दतें नैव तावत्प्रजायत सवो हितावद्धवत्यथ

यदैवं जाया विन्वतेऽथ प्रजायते तर्हि हि सर्वो भवति । शत. बा.-५.२.१.१०

डॉ. अल्बेर्तेन वेबेरेण सम्पादित शत. बा. ग्रन्थ पृष्ठ-४३४ पर पति-पत्नी के सम्बन्ध के बारे में उक्त श्लोक में वर्णन हैं कि, पत्नी पुरूष का आधा अंग यानी **"अर्धांगिनी"** होती है । पत्नी से रहित पुरूष धार्मिक-यज्ञीय कार्य नहीं कर सकता । इस लिए पुरूष पत्नी को प्राप्त करके पूर्णता प्राप्त करता है, डॉ.अल्बेर्तेन के अनुसार ऋग्वैदिककाल में पति-पत्नी में समानता थी ।[५६]

वैदिक ग्रन्थों में पत्नी के सम्बन्ध में कंई सूक्तों की रचना हुई है, मेक्समुलर कृत ऋग्वेद संहिता प्रथम भाग पृष्ठ-२४९ में निर्दिष्ठ ऋचा इस तरह हैं कि,

जायेदस्त मधवन्त्सेदु योनिस्त दित्वा हरयो वहंतुं ।

यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्रा। दूतो धन्वात्यच्छ ।। ३.५३.४

पत्नी ह गृह है, पत्नी ही पुरूष का आश्रय स्थान है । घर की सुरक्षा-संचालन और व्यवस्था की जिम्मेदारी पत्नी की थी । पत्नी परिवार की समृद्धि और कुलवृद्धि का आधार होती है, इस लिए **"जाया इत अस्तम"** अर्थात् पत्नी ही गृह है ।[५७]

ऋग्वेद भाष्य (१०.८५.४४) में भाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पत्नी को **"देवकामा"** और **"कल्याणकारी"** के रूप में वर्णन दिया है ।

अधोरचक्षुरपतिध्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।

वीरसुर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।। (१०.८५.४४)

इस मन्त्र में पत्नी को देवकामा और कल्याणकारी बनने की सलाह दी हैं । उत्तम मन आत्मबलवाली उत्तम ज्ञानवाली पत्नी से घर और परिवार की प्रगति होती हैं ।[५८] वेद ग्रन्थों में पत्नी को गृह कहा हैं । पत्नी सम्बन्ध में पुरन्धि, कल्याणी, कुलपा, सुमंगली, प्रतरणी और साम्राज्ञी जैसे विशेषण से इसका महत्त्व प्रस्थापित किया हैं ।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वा भव ।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ।।(१०.८५.४६)

इस मंत्र में पत्नीको कहा हैं कि **"हे वधू ! तुं सास, श्वसूर ननन्द तथा देवर के मध्य मे साम्राज्ञी (राजरानी) का रूप धारण कर ।"** इस तरह वैदिक काल में पत्नी केवल गृह की सेविका ही नहीं अपितु साम्राज्ञी भी बन गई हैं ।[५९] परिवार का वातावरण शांत और मंगलमय, सुखसमृद्धि बनाना हो तो पत्नी पतिव्रता और परिश्रमी होनी चाहिए इसके सन्दर्भ में अथर्ववेद में वर्णन हैं,

एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी संप्रिया पत्याविराधयन्ती ।। (२.३६.४)

इस मंत्र में कहा गया हैं कि पत्नी पति का विरोध न करे। पति के अनुकूल रहना चाहिए । जो ऐसी पत्नी हो तो गृह में और पति के प्रीतिपात्र होती है।जो पत्नी सरल, सौम्य और समर्पण भावयुक्त हो तो परिवार और गृह में सुख समृद्धि की वृद्धि होती है ।[६०]

ऋग्वेद में पतिव्रता पत्नी को बहुत महत्त्व दिया हैं। ऋग्वेद मंन्त्र १.७३.३ के अनुसार पतिव्रता स्त्री पवित्र और वन्दनीय है । पत्नी पतिपरायण हो तो पति, परिवार ओर समाज के लिए वरदानरूप है । ऋग्वेद के आठवाँ मंडल तैत्तीसवाँ सूक्त उन्नीसवीं ऋचा में पत्नी को सलाह दि गई है कि "तुम नीचे की और देखो, उपर नहीं, पैर को नजदिक रखो, अपना सभी अंग छिपकर रखो" इस ऋचा का भाव ऐसा है कि लज्जा स्त्री का सहज गुण है, पत्नी के व्यवहार में लज्जा का परिचय मिलना जरूरी है । घूरता चलना कटिभाग का अभद्र प्रदर्शन करना यह सब असभ्यता का संकेत है । इस लिए स्त्री को नीचे देखकर चलना और कटिभाग को छिपकर रखने की सलाह दी हैं । इस लिए स्त्री में लज्जाभाव होना जरूरी है वह सुशील पत्नी कहलाती है ।[६१]

अथर्ववेद (१४.२.२६) में पत्नी के कर्तव्यपालन का निर्देश हुआ ।

सुमंगली प्रतरणी गृहणां सुशेवा प्रत्ये श्वसुराय शंभुः स्योना स्वश्रवे प्र गृहानं विशेमानम् ।। (१४२.२६)

अथर्ववेद मंत्र से ज्ञात होता है कि जब युवती पत्नी बनकर श्वसूर पक्ष के घर में प्रवेश कर रही हो तब यही मंत्र के द्वारा पत्नी के कार्यो से उसे जागृत की जाती है । इस मंत्र भाव ऐसा हैं कि "हे मंगलकारिणी नववधू पति-परिवार के कष्टों दूर करने वाली पति सेवावृत्त, सास-श्वसूर के लिए कल्याणकारीणी सुखरूप, तु इस घर में प्रवेश कर ।"

ऋग्वेदिक काल में पति, सास-श्वसूर और परिवार के लिए पत्नी की फर्ज क्या हैं, इस मंत्र के द्वारा बताया है । पत्नी अपने परिवार को कष्ट से मुक्त करें, परिवार के विकास और प्रगति के आगे कदम बढ़ायें, और पति की सेवा, सासा-श्वसूर की सेवा यही पत्नी का कर्तव्य हैं ।[६२]

ऋग्वेद में पत्नी को पति का 'नेम' अथवा आधा अंग यानी अर्ध भाग कहा हैं । पत्नी और पति मिलकर दम्पती शब्द का प्रयोग किया हैं, दम्पती ही गृह के स्वामी हैं ।[६३]

अथर्ववेद के मन्त्र (३.२८.३) में पत्नी के कर्तव्य पालन के सम्बन्ध में वर्णन हैं कि,

शिवा भव पुरूषोभ्यो गोभ्यो अश्वेंभ्यः शिवा ।

शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा नं इहैधि ।।

अथर्ववेद के इस में पत्नी को कहा है कि, "है यामिनी, तु सभी परिवारजनों, पशुओं (गाय-घोड़ा) और उपजाऊँ खेतों के शुभ और सुखदायी हो ।" आगे कहा गया हैं कि पत्नी परिवार के सदस्यों, पशुओं के लिए सुखदायी हो । परिवार के लिए भरणपोषण की व्यवस्था करना पत्नी के आधिन हैं, पशुओं की देखभाल भी पत्नी का उत्तरदायित्व हो, पत्नी का परिवार खेत सम्बन्धी कार्य में प्रवृत्त हो तो पत्नी का खेतकार्य में सामेल होना जरूरी कर्तव्य होगा ।[६४] वेदकाल में पत्नी का महत्त्व का स्थान रहा होगा क्योंकि गृह व्यवहार में पत्नी का शब्द अंतिम होता था । वह घर का संचालन करती थी । वैदिक पत्नी को नदीओं पर शासन करने वाला समुद्र के बराबर बताई गई है । क्योंकि पत्नी घर और परिवार में केन्द्रस्थान पर थी । इसके सन्दर्भ में वेदकालीन पत्नी की

दिनचर्या विषय पर "ऋग्वेद में नारी" डॉ. कमला नोंध करते हैं कि "वैदिककाल में पत्नी सुबह उठकर सभी परिवारजनों को नींद से जागृत करती थी । प्रात:कालिन कार्यो को पूर्ण कर स्नान करके गार्हुपत्याग्नि में पति के साथ आहुतियों देती थी और बाद में घर के रोजिंदा कार्यो में व्यस्त रहती थी ।[६५]

छग्वेदकाल में पत्नी अपना गृह (श्वसूर के घर) सम्बन्धी सभी कर्तव्यों पूण कर सके इस लिए अथर्ववेद के मंत्र **"गृहानम गच्छ गृहपत्नी यथा"** में सलाह हैं कि, हे स्त्री तुम पति के घर गृहस्वामीनी बन कर रहो ।" और अन्य एक अथर्ववेद मंन्त्र "एवा त्वं सम्राज्ञेधि पत्युरस्तं परत्य ।" में अपने को स्वयं गृहसम्राज्ञी मान कर गृहसंचाालन करें ऐसी सलाह हैं ।

इस प्रकार पत्नी पति के घर में गृहस्वामीनी बनकर घर-परिवार में सभी प्रकार के कर्तव्यों पूर्ण करे ।[६६]

(७) स्त्रीका सम्पत्ति अधिकार :

ऋग्वेद युग में स्त्रिओं को सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त था या नहीं, यह वैदिक संहिताओं से स्पष्ट नहीं होता । परन्तु ऋग्वेद के एक मन्त्र में यह संकेत अवश्य विद्यमान हैं कि सन्तान(पुत्र)न होने पर पति के पश्चात् पत्नी ही सम्पति की स्वामिनी मानी जाती थी ।[६७]

डॉ. श्रीमती कमला "ऋग्वेद में नारी" में स्त्रियों के साम्पतिक अधिकार प्रकरण से नोंध करते है कि सम्पतिक अधिकार की स्थिति पर कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है । वेदों से परवर्ती साहित्य ग्रन्थों में भी संपत्ति अधिकार विवादास्पद हैं ।[६८]

टीना दोशी "प्राचीन कालमां स्त्री" में पृष्ठ-२०१ पर नोंध करते है कि ऋग्वेदकाल में पिता अपने पुत्र को ही सम्पत्ति का अधिकारी मानते थे । पुत्री को साम्पतिक अधिकार थोड़ा सा था, लेकिन पत्नीके सम्पति अधिकार में प्राचीन ऋषि मौन है । ऋग्वेद में पत्नी के साम्पतिक अधिकार के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है ।[६९]

रतिभावु सिंह नाहर अपनी पुस्तक प्रा. भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक ईतिहास, पृष्ठ-७४ पर नोंध करते हैं कि, **"पिता की सम्पत्ति का उचित उत्तराधिकारी पुत्र ही होता था - पुत्री नहीं । पुत्री को वह सम्पत्ति तब प्राप्त होती थी जब वह अपने पिता की अकेली सन्तान[३१] होती थी ।"**[७०] माता-पिता के साथ पितृगृह में रहनेवाली स्त्री और सम्पतिक अधिकार सम्बन्धी ऋग्वेद २.१७.२ से पता चलता है कि,

अमाजूरिव पित्रोः सचा सती
समानादा सदसत्वामिये भगम् ।

कृषि प्रकेत्तमुप मास्या भर
दद्धि भागं तन्वोयेन मामहः ।।

इस मन्त्र के अनुसार माता-पिता के साथ आजीवन एक स्त्री की तरह पैतृक घर में रहने वाली स्त्री (पुत्री) को पैतृक धन मिलना जरूरी है, जो की वह पुत्री (स्त्री) अपना जीवननिर्वाह और पैतृक परिवार के साथ आदर-सत्कार से रह सके । इस तरह पैतृक सम्पत्ति का हिस्सा मिलना चाहिए ।[७१]

ऋग्वेदकाल में भातृमती, अभातृमती अविवाहित पुत्री, विवाहित स्त्री या विधवा स्त्री किसी का भी सम्पत्तिका अधिकार नहीं था । ऋग्वदकाल में पितृसत्ताक की भावना अत्यंतिक प्रबल थी, इस लिए उस समाज में इस विचार की कल्पना नहीं की जा सकती थी कि दूसरे कुल में जानेवाली पुत्री सम्पत्ति अधिकारिणी न हो ।[७२] आगे बताया गया हैं कि ऋग्वेद मंत्र २.१७.२ में माता-पिता के घर आजीवन और अविवाहित रूप से रहने वाली पुत्री को थोड़ा अंश पैतृक सम्पत्ति में से मिलना चाहिए ।

ऋग्वेद संहिता (७.४.७-८) में सम्पाक राम शर्मा आचार्य / भगवती देवी शर्मा के अनुसार ऋग्वेदकाल में दत्तक प्रथा थी, लेकिन प्रचलित नहीं थी । **सातवाँ मंडल चौथा सूक्त में ऋचा सात-आठ में दत्तक पुत्र का वर्णन हैं ।**

परिषद्य ह्वारणस्य रेक्णो
नित्यस्य रायः पतय स्याम ।
न शेषो अग्ने
अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि
दुक्षः ।। (७)
नहि ग्रभायारणः
सुशेवोऽन्योदर्यो मानसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित्य एत्या
नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ।। (८)

उक्त मंत्र से ज्ञान होता है वैदकाल दम्पत्ती अग्निदेवं से स्तुति करते हैं कि अन्य पुत्र का पुत्र बनाने से हम पुत्रवान नहि बन सकते, हमें हमारा धन के स्वामी बनावो, हम अज्ञानी पुरूष के निर्देशित मार्ग पर चलकर कष्ट भूगतना नहीं चाहते।(७.४.७) । दत्तक पुत्र भले ही हमारी सेवा करेगा ओर धन के लालसी नहीं होगा, अपितु उसीका मन तो अपने जनक पिता में ही रहेगा । दत्तकपुत्र से हमें संतोष नहीं हैं, इस लिए हे देव ! हमे शत्रुओं से मुक्ति प्रदान करनेवाला पुत्र प्रदान करों । (७.४.८) इस तरह हम मान सकते है कि दत्तकपुत्र प्रचलन कम था ।[७३] स्त्री के सम्पत्ति अधिकार के सम्बन्ध में के. सी. श्रीवास्तव "प्राचीन भात का ईतिहास तथा संस्कृति में पृ. ८८-८९ पर लिखते है कि ऋग्वेद समाज में स्त्री का दरज्जा पुरूष के समान ही था लेकिन दो दृष्टियों से ऋग्वेदिक समाज उन्हें अयोग्य समझता था। (१) राजनैतिक क्षेत्र में भाग लेने का अधिकार स्त्री का नहीं था । (२) सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार नहीं था ।[७४]

वैदिककाल में अविवहित कन्या को पैतृक सम्पत्ति का हिस्सा मिलता था, किन्तु विवाहित कन्या के लिए सम्पत्ति का अधिकार नहीं था । ऋग्वेद मंत्र (३.४५.४) अनुसार पिता पुत्र को सम्पत्ति का अधिकार प्रदान करता हैं । दूसरे एक ऋग्वेद मंत्र (८.९९.३) से ज्ञान होता है कि पिता पुत्र को ही वारस बनाता था पुत्री को नहीं । अपितु विवाह के समय कन्या का 'वहतु' (उपहार ओर द्रव्य) के रूप में कुछ दिया जाता । ऋग्वेद के अन्य मन्त्र में बताया है कि पुत्री पिता के द्वारा अलंकार से विभुषित होकर श्वसूर गृह जाती है

। इन निर्देशों से ज्ञात होता है कि विवाहित स्त्री को **"वहतु"** के रूप सम्पत्ति दी जाती थी ।[७५]

इन सब आधार पर हमे ज्ञात होता है कि ऋग्वेदकाल में विधवा –नि:सहाय स्त्री के लिए कोई उपाय नहीं थे ।

(८) बहुविवाह बहुपत्नीप्रथा :

ऋग्वेदकाल में एक उच्च स्तर की सुव्यवस्थित सामाजिक स्थिति का संकेत मिलता है । साधारण जनता में एक से अधिक विवाह करने की प्रथा

नहीं थी, लेकिन राजवंशो में बहु–विवाह प्रचलित थे । स्त्रियाँ एक से अधिक पुरूषों के साथ विवाह कभी नहीं करती थी ।[७६] भारतीय महिला विश्वकोश में टीना दोशी की नोंध पृ.३३ को के अनुसार वेदकाल में सामान्यत: एकपत्नीत्व प्रथा ही देखने मिलती है । ऋग्वेद में पत्नी के लिए, **"जाया युवते पतिम्"** मंत्र में जाया शब्द पत्नी के लिए कंई बार और एक की संख्या के रूप में प्रयोजित हुआ हैं ।[७७] ऋग्वेद संहिता में कंई बार दम्पती शब्द पति–पत्नी के लिए प्रयोजित हुआ है जैसा कि,

या दम्पती समनसा
सुनुत आ च धावत: ।
देवासो
नित्ययाशिरा ।। (८.३१.५)

ऋग्वेद मंत्र में दम्पती शब्द गृह के स्वामित्ववाली व्यक्ति पति और पत्नी से सम्बन्धीत है, तीसरी कोई व्यक्ति इसमें सामिल नहीं हो सकती, क्योंकी 'दम्पती' शब्द पति–पत्नी के लिए ही प्रयोजित हुआ है ।[७८]

इस तरह हम मानते हैं कि वैदकाल में बहु–विवाह प्रथा नहीं थी । ऋग्वेद संहिता सम्पादक राम शर्मा आचार्य पृ. २३ मंत्र (७.१८.२) में एक भावार्थ ऐसा भी हैं कि "राणीओं' के बीच राजा सुशोभित है ।"[७९] इससे कंई विद्वान मानते हैं कि वेदकाल में बहुविवाह पर प्रतिबन्ध नहीं था, पर राजघराने, उमराव लोग में यह प्रचलन था, प्रथा नहीं । भारतीय ईतिहास का वैदिक युग में डॉ. एस. एल. नागोरी पृष्ठ –६५ पर नोंध करते हैं कि "ऋग्वैदिक काल में सामान्यत: एक पत्नीव्रत की प्रथा ही प्रचलित थी, परन्तु समाज के उच्च एवं धनी वर्ग के व्यक्ति कभी कभी एक में अधिक पत्नियाँ भी रखते थे ।[८०]

बहुपत्नी विवाह के सन्दर्भ के अनुरूप **"वैदिक साहित्य"** और **"संस्कृति"** में पृ. ३२६ पर नोंध हैं कि ऋग्वेद में बहुपत्नीप्रथा का स्पष्ट निर्देश हैं । राजाकी कंई पत्नियाँ होती, इसमें प्रधान पत्नी रानी को "महिषी", पुत्रवाली पर त्यक्ता रानी को "परिवृक्ता", राजा की प्रिय रानी को "चावाता" और एक नाम और मिलता है "पालागली" । यह सब महिषी, परिवृक्ता, वावाता, पालागली जैसे नामों वाली राजा के रानीयाँ थी ।

इन सब के आधार झीमर जैसे विद्वान के मतानुसार ऋग्वेद काल से ही एकपत्नी प्रथा का आरम्भ हो चूका था, एक अन्य विद्वान वेबर के मतानुसार एकपत्नीत्व प्रथा आरम्भ से थी और बाद में बहुपत्नीत्व प्रथा शुरू हुई है ।[८१]

(९) विधवा विवाह :

विगत: धव: पतिर्यस्या सा... इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार है : पति से वियुक्त स्त्री अथवा जिसके पति की मृत्यु हुई है ऐसी स्त्री अथवा **मृतपतिका ओर विधवा ।** वैदिककालीन विधवा की स्थिति अत्यंत करूण और दयनीय थी।आचार्य धर्मशिरस् अनुसार **"विधावनात्"** विधवा कहलाती अर्थात् पतिकी मृत्यु होने पर शोक पीड़ित अवस्था में यहाँ–वहाँ पछाड़ खाकर इधर–उधर गिरती है अथवा भयविहवल होकर इधर–उधर भागती हैं । ऐसी स्थिति का संकेत ऋग्वेद में पृथिवी के रूप में किया हैं कि,**"मरूतों की तीव्र गति के कारण यह पृथिवी पति से वियुक्त स्त्री के समान कांप जाती हैं ।"**[८२]

ऋग्वेद संहिता मे विधवा स्त्री का उल्लेख (१०.१८.७, १०.१८.८) मे मिलता है जैसे,

इमा नारीरविधवा : सुपत्नीराञ्जनेन सपिर्षा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवा : सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ।।
(१०.१८.७)

उक्त पंक्ति से यह अनुमान होता है कि शोक पीड़ित विधवा स्त्री साज–श्रृंगार– प्रसाधन आदि का परित्याग कर देती है और अविधवा उत्तम पतियोंवाली स्त्रियाँ धृतयुक्त अंजन लगाकर बैठे । इस तरह पति की मृत्यु उपरान्त पत्नी का जीवन नीरस, शोक पीड़ित एवं हर कार्य में अरूचिकर हो जाता है,उसे अलंकार प्रसाधन कैसे अच्छे लगते है ? मृत पति के समाज को भी यह बनाव और विधवा स्त्री का शृंगार–प्रसाधन उपयुक्त नहीं लगता ।[८३] हमे आगे देखा हैं कि विधवा का उललेख ऋग्वेद में हुआ है, विधवा के संरक्षण सम्बन्धी कंई दृष्टांत मिलते हैं , छग्वेद के (१०.४०.८) ऋचा में वर्णन है कि **"है देवता ! आप दुर्बल, सोते हुए, सेवा करने वाले और विधवा आदि की रक्षा करते हो ।"**

इसमें हमें, ज्ञात होता है कि इस ऋचा से विधवा को सुरक्षा मिलती है और विधवा पुनलंग्न कर सकती थी ।[८४]

विधवा का पुनर्विवाह एवं नियोग के बारे में ऋग्वेद के वर्णनों और अन्य साहित्य में यह निष्कर्ष सामने आता है कि ऋग्वेदिक विधवा को पुनर्विवाह और नियोग दोनों अवसर प्राप्त थे, ऋग्वेद के एक मंत्र में **"विधवेव देवरम्"** कहकर संकेत दिया हैं कि विधवा स्त्री "देवर" को पति के रूप में अपना सकती है । देवर का प्रचलित अर्थ पति का भाई हैं। निरूक्त के अनुसार "देवर" का अर्थ हैं कि विधवा के किसी भी होने वाले दूसरे वर को 'देवर' कहा जाता था । मंत्र के रूप में देखें तो, **"देवर: कस्मात् । द्वितीयो वर उच्यते ।"** विधवा के इस विवाह का संकेत ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में प्राप्त एक मन्त्र में **"देवृकामा"** पद से मिलता है । स्वामी दयानन्द सरस्वतीने इसका अर्थ आवश्यकता पडने पर नियोगार्थ की कामना करने वाली विधवा किया है ।

आचार्य सयणने १०.१८.८ मन्त्र में अर्थ किया है कि, **हे मृत्यु को प्राप्त हुए मृत पति की पत्नी जीवित पुत्र–पौत्रों का लोक जो घर है, उसका विचार करके प्राणान्त हुए पति के पास से ३ठ, वहाँ न सो तु अब पाणिग्रहण करने वाले द्वितीय पति के सम्बन्ध से आये हुए इस पुरूष का जाया–भाव से अनुसरण कर ।** यही मन्त्र अथर्ववेद १८.३.२ में इस प्रकार आया हैं। अथर्ववेद में अन्य स्थलों पर भी पुनर्विवाह के स्पष्ट उल्लेख हैं। इन सभी प्रमाणों से द्वितीय पति को प्राप्त करने और पुनर्विवाहों या नियोग[८५] के प्रमाण मिलते है। वैदिक कालमें उल्लेखनीय नियोग प्रथा थी।वेदकाल में पुत्रप्राप्ति को महत्त्व दिया जाता था। कोई स्त्री का पति की मृत्यु हो अथवा सन्तानोंत्पत्ति में निष्फल हो,तो स्त्री अन्य पुरूष के साथ संग करके सन्तान प्राप्त कर सकती थी इसे"नियोग"प्रथा कहते थे ।[८६]

ऋग्वेद संहिता मंत्र (१०.८५.४०) व्याख्याकार पं. ईश्वरचन्द्र जोशी के अनुसार सबसे पहले सोमदेव स्त्री को पत्नी के रूप में प्राप्त करता है, गन्धर्व बाद में दूसरा पति, तीसरा पति, अग्निदेव हैं और चौथे पति के रूप मनुष्य हैं।[८७] इस मंत्र के आधार मानकर कंई विद्वान नियोग प्रथा से निर्देशित करते हैं । इस लिए हम मान सकते हैं कि वैदिककाल में नियोग, प्रथा स्वीकृत थी ।

(१०) सतीप्रथा :

प्राचीन काल में विधवा स्त्री की स्थिति या वर्णनों से स्पष्ट निर्देश हैं कि पति के मृत्य बाद पत्नी अग्नि प्रवेश करके सती होने का कोई उल्लेख वैदकाल के ग्रंथो में नहीं मिला । ऋग्वेद ग्रंथ में भी स्पष्ट सती होने का कोई प्रसंग नहीं वर्णित नही हैं । ऐसा **"वुमन इन ऋग्वेद"** ग्रन्थ में भगवती शरण उपध्याय नोंध करते हैं, परन्तु विदेशी संशोधक "ए. ए. मेकडॉनेल" इस उपयुक्त विधान के साथ सहमत नहि हैं, वे "वैदिक मायथोलाजी" में नोंध करते हैं कि, ऋग्वेद में मृत पुरूष के साथ उसके शस्त्रो और पत्नी का भी अग्निदाह होता था ऐसा अवशेष आज भी उपलब्ध है । ऋग्वेद में मृत पति के अन्तिम संस्कार क्रिया में मृत पति के साथ पत्नी को बैठाते, मृतक पति के शस्त्रों यही सब मृत पति की चित्ता पर रखने की विधि होती थी, यह प्रथा निर्देश करती हैं कि प्राचीन समय में परलोक में मृत पति का साथ मिले इस हेतु से पत्नी और शस्त्रो को अग्निदाह दिया जाता ।[८८]

ऋग्वेद संहिता (१०.१८.८) के अनुसार,

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ।।
(१०.१८.८)

हे मृतक की पत्नी । जीवित पुत्र–पौत्रादि के घर को लक्ष्य करके आप इस स्थान से
उठिए तथा अपक्रान्त प्राण वाले पति के समीप व्यर्थ सोयी है । अत: आईए और पाणिग्रहण करने वाले तथा गर्भ के निधाता इस अपने सम्बन्ध से उत्पन्न पुत्रों को लक्ष्य करके पति के मरने के पीछे अनुकरण के निश्चय को छोड़िए ।[८९]

इनके आधार पर कंई विद्वानों – लेखकों ने अपने विविध मंतव्य दिए है जैसे कि,

(१) ऋग्वेद हिन्दी भाष्य में, **महर्षि दयानन्द सरस्वती नोंध करते है कि जब कोई स्त्री जो सन्तान आदि करने में समर्थ हैं, विधवा हो जाती है तब वह नियुक्त पति के साथ सन्तान उत्पत्ति के नियोग कर सकती है** (१०.१८.८)[९०]। इससे पता चलता है कि सती प्रथा इसमें कोई विधान नहीं है, जरूर नियोग प्रथा का विधान है ।

(२) के. सी. श्रीवास्तव **"प्राचीन भारत का ईतिहास तथा संस्कृति"** पृ. ८८ पर लिखते है कि, तत्कालिन समाज में सतीप्रथा के प्रचलित होने का उदाहरण नहीं मिलता । ऋग्वेद मंत्र (१०.१८.८) से पता चलता है कि इस प्रागैतिहासिक प्रथा की औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए स्त्री अपने मृत पति के साथ चित्ता पर लेटती थी तथा फिर उसके सम्बन्धी उससे चित्ता से उठने के लिए आग्रह करते थे । नियोग प्रथा के प्रचलन का संकेत मिलता है जिसके अन्तर्गत पुत्र विहिन विधवा पुत्र–प्राप्ति के निमित्त अपने देवर के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करती थी ।[९१]

(३) धर्मशास्त्रों की प्रतिनिधि स्मृतिओं में स्त्री का स्थान, नामक पीएच. डी. थीसीस–१९८७ में प्रा. के. जी. अजाबिया, पृ. १४१६/१७ पर नोंध करते हैं कि **"ऋग्वेद मन्त्र (१०.१८.८) में सती प्रथा के अवशेष देखने मिलते हैं । परन्तु मृत पति के चित्ता के पास सोयी हुई पत्नी को वापस आने का अनुरोध किया हैं ।** इसका तात्पर्य यह है कि प्राग्वैदिकआर्यो के समय सती प्रथा का प्रचलन होगा । लेकिन वैदिक आर्यो के समय इस प्राचीन प्रथा का प्रचलन नहीं था । प्राग्वैदिक प्रथा के अनुसार यह सब औपचारिक रीति से होता था, लेकिन वैदिककाल में सतीप्रथा का प्रचलन नहीं था ।[९२]

(४) ऋग्वेद में नारी पृ. १३२ पर डॉ. कमला नोंध करते हैं कि ऋग्वेद मंत्र (१०.१८.८) की रचना के समय **वैदिक आर्यो में विधवा के अन्वारोहण की प्रथा समाप्त हो गई थी । विधवा केवल आचार के निर्वाह मात्र के लिए अपने मृत–पति के समीप लेट जाती थी और उसके पति का कोई सम्बन्धी विधवा (अपने पति की चित्ता पास सोयी) को उठने के लिए बाध्य करता था । मृत पति के समीप लेटने मात्र यह समझ लिया जाता था कि विधवा अपने मृत पति के प्रति पत्नी का अंतिम कर्तव्य (अर्थात् पति का मृत्यु के द्वार तक भी साथ देना) कर चुकी हैं ।**[९३] इन सभी तथ्य से ज्ञान होता है वैदकाल में सती प्रथा नहीं थी ।

(११) वेदकालिन स्त्री व्यवसाय :

स्त्री घर की साम्राज्ञी होने के कारण ही घर की संचालिका और घरेलू व्यवहारों की सम्पादिका होती थी ।[९४] वैदिककालिन समाज पशुपालन और कृषि के कार्यो उपरान्त ऋग्वेद, अथर्ववेद, तेत्तरीय संहिता और वाजसनेयी संहिता में वर्णित रथकार, कुलाल, कर्मार (लूहार), सुथारीकाम वैद्यकीय कार्य, शिकार इत्यादि,[९५] वैदिक अर्थव्यवस्था को गति देनेवाले नाना प्रकार के शिल्पकार्य, कुटिर उद्योग और कला सन्दर्भ

प्राप्त होते है । ऋग्वेद के एक मन्त्र में एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा पृथक्–पृथक् वृत्तिओं को अपनाने की माहिती प्राप्त होती है । वैदिकयुग में नाना प्रकार के उद्योग, शिल्पों या उद्यमों से भी धन अर्जित किया जाता था यजुर्वेद के त्रीसवें अध्याय में २९ शिल्पों के नाम मिलते है । इनमें से कुछ शिल्प ऐसे थे जिन्हें स्त्रीयाँ ही कुशलता और विशेषज्ञता से सम्पादित करती थी, जैसे वस्त्र को रंगनेवाली स्त्री **रजयित्री,** बांस, बेंत सरकन्डे आदि में वस्तुएँ बनाने वाली स्त्री **कण्टकीकारी,** कढ़ाई या कसीदे का काम करने वाली स्त्री **पेशस्करी** बकरे के चमड़े को छिलनेवाली स्त्री **अजनकारी**, धोबी का काम करने वाली स्त्री **वासपल्पूली** । इस तरह शिल्पकारिणी स्त्रीयाँ वस्त्रों को रंगने, धोने, काढने आदि का व्यवसाय करती थी ।[९६]

आर्य स्त्री कताई–बुनाई के कार्य में दक्ष थी।ऋग्वेद में जुलाहे के कार्य के लिए "वाय"शब्द का और करघा के लिए "तसर" शब्द का उललेख मिलता है । वस्त्रों के उपर काम करने वाली स्त्री को **पेशस्करी**[९७] और कढ़ाई का काम करने वाली स्त्री को ऋग्वेद में **पेशस्कारी** कहा गया है । वेदयुगमें कताई–बुनाई और कढाई के काम प्राय: स्त्रीयाँ ही करती थी । बुनाई का काम करने वाली स्त्री का "सिरी" कहा गया हैं ।[९८] स्त्री का एक अन्य कार्य था **"कुश"** मामक घास का संग्रह करना आर इसमें से वस्त्र बनाना ।[९९]

वेदकालिन स्त्रीयाँ सूत कातती थी, अथर्ववेद में भी मिलजुलकर वस्त्र बुनने का उपदेश दिया है, तैयार हुए सूत से स्वयं ही ताने–बाने में तैयार करके सूती कपड़े का रूप प्रदान करती थी । साथ ही उनका प्रयत्न रहता था कि कपड़ा टिकाऊ बने, जिसे काफी समय तक धारण किया जा सके । इस प्रकार कहा जा सकता है कि तत्कालिन समाज में कुटिर उद्योग–धन्धो को भी पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता था और स्त्रीयाँ सूती कपड़ों में कताई–बुनाई करने में दक्ष थी ।[१००] इषुकार (बाण बनाने वाले), धनुष्कार, ज्याकार (प्रत्यच्चा कनाने वाले) पुरूषों को सहायक होती थी, इस तरह स्त्रीयाँ पुरूषों के साथ इषुकार, धनुष्कार और ज्याकार बनाने में विशेषज्ञ शिल्पी होने का सन्दर्भ मिलता है । धनुष–बाण बनाने वाली स्त्री को इशुक्रिया कहते थे ।

शिल्प उद्योग के साथ–साथ स्त्रीयाँ कंई कलाओं मे अर्थोपार्जन भी कहती थी । जैसे, नृत्यकला, गीत–संगीत, वाद्य इन सभी कलाओं में स्त्रीयाँ पर्याप्त भाग लेती थी ।[१०१]

दिव्यस्वरूप ऐसी मानवतर स्त्रीयाँ, जो देवों को अपनी कला और रूप–सौन्दर्य से प्रसन्न करती ऐसी स्त्री "अप्सरा" कही जाती थी । अप्सरा उन स्वैरिणी स्त्री की प्रतीक थी । इसके साथ कंई स्त्रीयाँ गणिका या वेश्या के रूप में पुरूष को समर्पित होते हुए जीविकार्जन करती थी । सत्यकाम जाबाल की माता जबाला भी सम्भवत: सामान्य वर्ग की ऐसी ही एक स्त्री का प्रतिनिधित्व करती थी ।[१०२]

(१२) वेदकालिन स्त्री विरांगना के रूप में :

वेदकालिन स्त्री पुरूष के समकक्ष मानी जाती थी उसे विद्याअध्ययन, धार्मिक क्रियाकल्प, ऋषिका और ब्रह्मवादिनी की तरह ज्ञान प्राप्ति का पूरा हक था । उसी तरह वेदकाल में स्त्रीयों कों सैनिक शिक्षा भी दी जाती थी । ऋग्वेद में वीरता गुण से सम्पन्न सन्तान की बहुत कामना की गई है और ऐसे स्त्री–पुरूषों को प्रशंसनीय माना है । ऋग्वेद में स्त्री के विरांगना रूप को चित्रित करने वाले अनेक उल्लेख मिलते हैं ।[१०३]

समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी ।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च ।। (१०.१५९.६)

इस ऋचा के ऋग्वैदिक नारी अपने आपको विरांगना और शत्रुहन्ता घोषित करनेम में गौरव का अनुभव करती है, वह वीरजन का गौरव पाने की कामना करती बताई गई है ।[१०४]

अवीरामिव मामयं शरीरुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नीमरूत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।(१०.१५९.६)

उक्त ऋचा में नारी को "अवीरा" समझने वाले को नारी यह चेतावनी देती हैं कि मैं "वीरिणी–इन्द्रपत्नी" पत्नी हूँ और शक्तिशाली वायु के समान पराक्रमी हूँ ।[१०५]

ऋग्वैदिक स्त्री को सैनिक शिक्षा दी जाती थी । इस काल में ऋग्वेद(१.४८.६)में नारी को संग्राम करती हुई योद्धा स्त्री का चित्रण हैं कि वह रक्त की धारा बहाती हुई शत्रूओं को परास्त करती हुई आगे बढ़ रही है और १.११६.९ में नारी को युद्ध में जाने की प्रेरणा है ।[१०६]

वेदकाल में युद्ध विजय और प्रगति के लिए स्त्री महत्त्व का घटक हुआ करती थी । वेदकाल में स्त्रीओं को लश्करी प्रशिक्षण दिया जाता था । ऋग्वेद में दो स्त्री योद्धा का उल्लेख **वाघ्रीमति** और **विश्पला** के नाम से मिलता है, इन दोनों स्त्रीओं ने युद्ध मेदान में भाग लिया था । वाघ्रमति का हाथ युद्ध मेदान में कटा हुआ था । अश्विनीकुमारों ने वाघ्रमति को सोने (कुछ ग्रन्थो में लोहा का उल्लेख है)का हाथ प्रदान किया था ।[१०७] स्त्री योद्धा के रूप में दूसरा नाम विश्पला का है, वह खेल राजा की पत्नी थी अपने पति के साथ युद्ध में संग्राम खेलते खेलते रात्रि के समय जैसे किसी पक्षी के पंख के समान विश्पला का पैर टूट गया, खेल राजा के पुरोहित अगस्त्यने अश्विनी देवों से प्रार्थना की थी और ऋग्वेद मन्त्र (१.११६.१५) मे बताया हैं कि

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितकम्यायाम ।
सद्यो जङधामायसी विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधतम ।।

अगत्स्य की प्रार्थना से अश्विनी देव प्रसन्न हुए और रात्रि के समय में ही खेल राजा की पत्नी विश्पला का पैर लोहमय पाद से सन्धान कर दिया था ।[१०८] विश्पला की तरह इन्द्र सेनाने भी सेना में रथी और सारथि के रूप में कार्य किया है । इन्द्रसेना मुदगल ऋषि की पत्नी थी, इसे मुदगलानी भी कहते थे । मुदगल ऋषि तथा पत्नी इन्द्रसेन (मुदगलानी) के

पास गौधन था । एक दिन लूटेरे लोग इस पति-पत्नी का गौधन लूट गया, ऋग्वेद ऋचा (१०.१०२.२) में वर्णन

उत्स्म वातो वहति वासो
अस्या अधिरथं यदजयत्सहस्त्रम् ।
रथीरभुन्मुद्गलानी गविष्टौ भरे
कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ।।

इस तरह इन्द्रसेनाने रथ में बृषभ को जोतकर सारथि का काम किया और उक्त मंत्र के अनुसार"हे इन्द्रदेव सहाय करो लूटेरों हमारी गायों को जहाँ ले गया होगा वहाँ हमारा रथ पहुँचा दो" इस तरह सारथि बनकर सहस्त्रों गौसमूह को वापस जीत लिया ।[१०९]

इस तरह वैदिककाल में "नमुचिने" एक स्त्री सेना तैयार करने का उदाहरण मिलमता है, एक और इन्द्र में वृषासुर की माता "दनुं" को युद्ध में मारा था ऐसा सन्दर्भ मिलता है ।[११०] इस तरह हम जान सकते हैं कि वैदिक युग में स्त्रीयाँ शूरवीर, योद्धा और सारथि हुआ करती थी । वेदकालिन
विरांगना के रूप में विश्पला का नाम अग्रीम हैं ।

नोंध : यह शोधपत्र ईतिहास विभाग सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट के राष्ट्रिय परिसंवाद दिनांक : २५ एवं २६ फरवरी, २०१७ में प्रस्तुत ।

सन्दर्भ :

१. दोशी टीना : भारतीय महिला विश्वकोश - नव भारत साहित्य मन्दीर, अहेमदाबाद-२०१५ पृष्ठ (११)
२. डॉ. (श्रीमती) कमला: ऋग्वेद में नारी, पृष्ठ ३८-३९
३. **ऋग्वेद** : ९:६७:१०
४. दोशी टीना : प्राचीनकाल में स्त्री-युनि. ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, अहमदाबाद-२००२ पृष्ठ-४२
५. पूर्वोक्त सन्दर्भ -१ : पृष्ठ -९
६. क्षेमकरणदास त्रिवेदी : **अथर्ववेद भाष्य** (३:२३.३), दिल्ली पृष्ठ -२९८
७. **ऋग्वेद** : (९:६७:११)
८. पूर्वोक्त सन्दर्भ -४ : पृष्ठ-४२
९. देवलुक नन्दलाल बी : विश्व की अस्मिता-नन्दलाल बी. देवलुक-भावनगर, १९८१, पृष्ठ-३७३
१०. पूर्वोक्त सन्दर्भ -१ : पृष्ठ - ९
११. **ऋग्वेद** : ८:३१:८, ३:३१:२
१२. पूर्वोक्त सन्दर्भ -१ : पृष्ठ- ९
१३. **अथर्ववेद** : १४:२:६०
१४. पूर्वोक्त सन्दर्भ -२ : पृष्ठ -३९
१५. **ऋग्वेद** : १०:१५९:३
१६. **अथर्ववेद** : १४:२:६०
१७. वैद्य विजयराय कल्याणराय : ऋग्वेदकाल का जीवन और संस्कृति, पृष्ठ-१६९
१८. श्रीवास्तव के. सी. : प्राचीन भारत का ईतिहास तथा संस्कृति - ईल्हाबाद, पृष्ठ-८८
१९. विद्यालंकार सत्यकेतु : प्राचीन भारत का धार्मिक सामा. और आर्थिक जीवन, सरस्वती सदन, नई दिल्ही-१९९८, पृष्ठ-२५७
२०. पूर्वोक्त सन्दर्भ -२ : पृष्ठ- ८८
२१. **ऋग्वेद** : (१०:३९:६)
२२. डॉ.चोपरा पी.एन.:भारत का गेझेटियर युनि. ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, गु.रा. अहमदावाद-२००१, पृष्ठ-९०
२३. पूर्वोक्त सन्दर्भ -९ : पृष्ठ-२७४
२४. ऋग्वेद : १०.१५९:२
२५. पूर्वोक्त सन्दर्भ -२ : पृष्ठ -९२
२६. पूर्वोक्त सन्दर्भ -१ : पृष्ठ -११
२७. पूर्वोक्त सन्दर्भ -२ : पृष्ठ -७२
२८. पूर्वोक्त सन्दर्भ -१ : पृष्ठ -११
२९. परिख प्रविणचन्द्र : भारत दर्शन-१, एस. पी. युनि. वल्लभ विद्यानगर-१९८२, पृष्ठ-५९
३०. ऋग्वेद संहिता भाग-१ : श्री रामशर्मा आचार्य- श्री भगवती देवी शर्मा - शान्तीकुंज हरिद्वार - परि-१, पृष्ठ-४
३१. पूर्वोक्त सन्दर्भ -४ : पृष्ठ -८४
३२. जानी शान्तीलाल : भारत के नारी रत्नो-१, प्रविण पुस्तक, राजकोट-२००१, पृष्ठ-६८
३३. पूर्वोक्त सन्दर्भ -४ : पृष्ठ -८६
३४. पूर्वोक्त सन्दर्भ -३२ : पृष्ठ -११९
३५. दोशी टीना:नारी तुं निराली- नवभारत साहित्य मन्दिर, अहमदाबाद-२००९, पृ. १४९
३६. दोशी टीना : प्राचीनकाल में स्त्री युनि. ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, गुज. अहमदाबाद-२००२, पृ. ८७
३७. जानी शांतिलाल, भारतनां नारीरत्नो - प्रवीण पुस्तक भंडार, राजकोट २००१, पृ.४४
३८. परीख प्रवीणचन्द्र चि. : भारत दर्शन-१, स.य. युनि. वल्लभ विद्यानगर-१९८२, पृष्ठ-५९
३९. पूर्वोक्त सन्दर्भ -३६ : पृष्ठ -१०४
४०. पूर्वोक्त सन्दर्भ -३७ : पृष्ठ -६९
४१. घोष, प्रोफ. इला : वैदिक संस्कृति संरचना - ईस्टर्न बुक लिन्कर्स, दिल्ही-२०१२, पृ. ३९
४२. पूर्वोक्त सन्दर्भ -२ : पृष्ठ -११०
४३. पूर्वोक्त सन्दर्भ -१ : पृष्ठ -२५
४४. एजन : पृष्ठ -२६
४५. पूर्वोक्त सन्दर्भ -९ : पृष्ठ -३७३
४६. पूर्वोक्त सन्दर्भ -२ : पृष्ठ -११
४७. ऋग्वेद संहिता : पंडित ईश्वरचन्द्र क. जोशी - चतुर्थखण्ड : परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ही-२०११, पृ. २६०
४८. ऋग्वेद संहिता : पं. श्री राम शर्मा आचार्य : भाग-३ (गुजराती भावार्थ) हरिद्वार-१९९५, पृ. ९७
४९. पूर्वोक्त सन्दर्भ -१ : पृष्ठ -२८
५०. ऋग्वेद संहिता : पूर्वोक्त सन्दर्भ -४ : पृष्ठ ३६१-६२
५१. पूर्वोक्त सन्दर्भ -१ : पृष्ठ -३३

५२. एजन : पृष्ठ–३२
५३. पूर्वोक्त सन्दर्भ –२ : पृष्ठ –११३
५४. श्रीवास्तव के. सी. : प्रा. भा. ईति. तथा संस्कृति, युनाइटेड बुक डिपो, इल्हाबाद–२००५–०६, पृष्ठ–८८
५५. एजन : पृष्ठ –५५
५६. **शतपथ ब्राह्मणम्** : डॉ. अल्बेर्तेन वेबेरेण : चौखम्बा संस्कृत सीरीझ आफिस वाराणसी–१, १९६४, पृष्ठ –४३४
५७. **ऋग्वेद संहिता : मेक्समूलर** : चौखम्बा संस्कृत सीरीझ आफिस, वाराणसी १९६५, वोल्यु–१, पृष्ठ –२४९
५८. ऋग्वेद भाष्य : महर्षि दयानन्द सरस्वती : पृष्ठ–८५३
५९. एजन : पृष्ठ–८५४
६०. अथर्ववेद भाष्य : क्षेमकरणदास त्रिवेदी : पृष्ठ–२१८–१९
६१. पूर्वोक्त सन्दर्भ –१ : पृष्ठ –३७
६२. अथर्ववेद संहिता –१४.२.२६
६३. पूर्वोक्त सन्दर्भ –२ : पृष्ठ –४०
६४. अथर्ववेद भाष्य – पूर्वोक्त सन्दर्भ –६० : पृष्ठ –३१४
६५. पूर्वोक्त सन्दर्भ –१ : पृष्ठ –३९
६६. एजन : पृष्ठ–३८
६७. विद्यालंकार सत्यकेतु : प्रा. भा. का धा. सा. और आर्थिक ईतिहास, दिल्ही–१९९८, पृ. २१६
६८. पूर्वोक्त सन्दर्भ –२ : पृष्ठ –८५
६९. पूर्वोक्त सन्दर्भ –४ : पृष्ठ –२०१
७०. नाहर रतिभानुंसिंह, : प्रा.भा. का राज. एवं सांस्कृतिक ईतिहास –किताब महल, दिल्ही–१९९९, पृष्ठ–७४
७१. ऋग्वेद : २:१७:२
७२. पूर्वोक्त सन्दर्भ –२ : पृष्ठ –८६
७३. ऋग्वेद संहिता, पूर्वोक्त सन्दर्भ –४८ : ७:४:७–८
७४. पूर्वोक्त सन्दर्भ –१८ : पृष्ठ– ८८–८९
७५. पूर्वोक्त सन्दर्भ –१ : पृष्ठ –४७
७६. महाजन वी. डी. : प्रा. भा. का ईति. : एस चन्द्र एन्ड कम्पनी, दिल्ही–२०१५ (पूनः मुद्रण), पृष्ठ–६४
७७. पूर्वोक्त सन्दर्भ –१ : पृष्ठ –३३
७८. ऋग्वेद संहिता : पूर्वोक्त सन्दर्भ –४८ : पृष्ठ –८६
७९. एजन : पृष्ठ–२३ (७:१८:२)
८०. नागोरी डॉ. एस. एल. भा. ईति. का वैदिक युग पोइन्टर पब्लिकेशन्स, जयपुर–२००८, पृष्ठ–६५
८१. पटेल महामहोपाध्याय जी. वाडीलाल, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति–युनि.ग्रं. नि. बोर्ड, अहमदाबाद–२०१४, पृष्ठ –३२६
८२. पूर्वोक्त सन्दर्भ –१ : पृष्ठ ४८–४९
८३. ऋग्वेद संहिता : पूर्वोक्त सन्दर्भ –४७ : पृष्ठ –२४०
८४. ऋग्वेद भाष्य : पूर्वोक्त सन्दर्भ –५८ (१०:४०:८)
८५. पूर्वोक्त सन्दर्भ –२ : पृष्ठ –१२८
८६. पूर्वोक्त सन्दर्भ –८१ : पृष्ठ –३२७
८७. ऋग्वेद संहिता : पूर्वोक्त सन्दर्भ –४७ : पृष्ठ –४११
८८. पूर्वोक्त सन्दर्भ –४ : पृष्ठ २०८
८९. ऋग्वेद संहिता : पूर्वोक्त सन्दर्भ –४७ (१०:१८:८)
९०. ऋग्वेद भाष्य : पूर्वोक्त सन्दर्भ –५८ : पृष्ठ –५१२
९१. पूर्वोक्त सन्दर्भ –१८ : पृष्ठ –८८
९२. अजाबिया प्राध्या. के. श्री धर्मशास्त्रोनी प्रतिनिधि स्मृतिओमां स्त्रीनुं स्थान,पीएच.डी.थीसिस–सौ.युनि.१९८७, पृ. १४१६–१७
९३. पूर्वोक्त सन्दर्भ –२ : पृष्ठ –१३२
९४. पूर्वोक्त सन्दर्भ –२ : पृष्ठ –११७
९५. पूर्वोक्त सन्दर्भ –९२ : पृष्ठ १९०२–०३
९६. पूर्वोक्त सन्दर्भ –४१ : पृष्ठ –२४६–४७
९७. पूर्वोक्त सन्दर्भ –८० : पृष्ठ –७२
९८. लूनिया बी. एन. : पा. भा. संस्कृति : लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा–२००३, पृष्ठ–११०
९९. वैद्य विजयराय कल्याणराय : ऋग्वेदकालनुं जीवन अने संस्कृति : स्वप्रकाशन, भावनगर–१९४१, पृष्ठ –१७४
१००. पन्त निवेदिता : अथर्ववेद का सा. अध्य. ईस्टर्न बुक लिन्कर्स, दिल्ही–२००७, पृष्ठ–९२
१०१. पूर्वोक्त सन्दर्भ –४१ : पृष्ठ –२४७–४८
१०२. एजन : पृष्ठ –२३१–३२
१०३. पूर्वोक्त सन्दर्भ –४ : पृष्ठ –९२
१०४. पूर्वोक्त सन्दर्भ –४७ : पृष्ठ –५१४
१०५. एजन, पृष्ठ–४१४
१०६. पूर्वोक्त सन्दर्भ –२ : पृष्ठ –९२
१०७. शिरीन महेता, गुजरातमां नारी चेतना दर्शक ईतिहासनिधि– अहमदाबाद–२००९, पृष्ठ –४२
१०८. पूर्वोक्त सन्दर्भ –४७ : पृष्ठ –३०० (१.११६–१५)
१०९. एजन, पृष्ठ –४७२
११०. पंडित विश्वेश्वरनाथ रेउ, ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि, मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ नं. २१७.